

हिन्दी काव्य में प्रकृति-वर्णन

Hindi Kavya me Prakriti Varnan

‘प्रकृति’ शब्द बड़ा व्यापक अर्थ वाला है। यह मानव स्वभाव के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह सांख्य दर्शन के अनुसार नारी का और दूसरे मतों से माया का पर्यायवाची है, और इसके साथ ही इसके मूल गुण का भी अर्थ व्यजित होता है। काव्य में प्रकृति का इसी मूल गुण युक्त अकृत्रिम वातावरण से है जो प्रायः मानव के ही नहीं अपितु प्राणि मात्र के चतुर्दिक व्याप्त है। इसी प्रकृति को ईश्वर की क्रिया का मूर्त कारण, उसकी सजीव प्रत्यक्ष पोशाक कहा गया है विश्व-विख्यात कवि वर्ड्स वर्थ के अनुसार-प्रकृति ईश्वर की अभिव्यक्ति है। प्रकृति को ईश्वर की शक्ति के रूप में ही सदा स्वीकार किया गया है।

मानव ईश्वर की ही सृष्टि है। अतः प्रकृति से उसका निकटस्थ और अनिवार्य सम्बन्ध सदा से ही रहा है। जब आदि मानव ने अपने नेत्र खोले होंगे, तो उस समय प्रकृति उसकी धात्री रही होगी। डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार आदि मानव, मगरमच्छ, पशु-पक्षी, लंगूर और बन्दर आदि सब प्रकृति के खुले प्रांगण ही में अपना जीवन बिताते थे। आज का बुद्धिवादी मानव भी प्रकृति नटिनी से किसी न किसी रूप में क्रीड़ा कर ही रहा है।

भारत, प्रकृति नटी का सुरम्य क्रीडा स्थल है। यहाँ के वन, नदी, सागर, पर्वत, झील, समुद्र और मरुस्थल सभी अनुपम हैं। निखरे हुए प्रातः-सायं, दुग्ध धवल चाँदनी, चिलचिलाती हुई धूप, झमकती हुई वर्षा, सरसराती हुई सरदी, ऋतुराज वसन्त सभी अपने क्रम में अपने नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य की छाया मानव-मन पर छोड़ जाते हैं। यही कारण है कि यहाँ के साहित्य में प्रकृति अपने विभिन्न रूपों में झाँकती है। वैदिक-साहित्य तो उषा, वन, नदी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि के सुन्दर वर्णनों से ओतप्रोत है। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी कालिदास के मेघदूत के ‘यक्ष’ को मेघ के अतिरिक्त अन्य कोई दूत ही नहीं मिल पाता है। वाल्मीकि के राम और भवभूति की सीता की प्रकृति में आत्मीयता का अनुभव करते हुए अपने भावों को उसके सामने प्रकट करते हैं।

वीरगाथा काल में या तो शस्त्रों की झनझनाहट सुनाई पड़ती थी या पायलों की झनझनाहट। अतः इस काल के साहित्य में प्रकृति-वर्णन के लिए विशेष स्थान तो नहीं था; किन्तु

‘पृथ्वीराज रासो’ के अध्ययन से पता चलता है कि कवि प्रकृति से प्रभावित रहा है। विद्यापति ने अपने काव्य में प्रकृति से अनेक उपमान ग्रहण किए और उसका उद्दीपन रूप में भी चित्रण किया है। उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण भी किया है।

भक्तिकाल में कवियों ने प्रकृति को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। उससे उद्दीपन का काम लिया और उसी रूप में चित्रित कर अपने नायक-नायिकाओं का उत्कर्ष दिखाया तुलसी का उपदेश रूप में किया हुआ प्रकृति-चित्रण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है।

दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥

सूर ने अपनी अन्धी आँखों के होते हुए भी प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है। गोपियों के भावोद्दीपन में प्रकृति किस प्रकार कार्य करती है इसका सूर ने ‘मधुबन तुम कत रहत हरे तथा ‘बिन गोपाल बैरिन भड़ कँजै’ में यथा तथ्य चित्रण किया है। इन रूपा के साथ ही साथ कबीर जैसे दार्शनिक कवि ने प्रकृति का प्रतीक रूप में भी विधान किया है। दृष्टव्य हैं ये पंक्तियाँ:

‘काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरे ताल सरोवर पानी।

जल में उत्पत्ति जल में वास जल में नलिनी तोर निवास॥

रीतिकाल में आकर प्रकृति भी काव्य के साथ-भंगारमय हो गई। सेनापति और बिहारी की कविता में प्रकृति का बहत सन्दर और संश्लिष्ट चित्रण हुआ है जिसे देखकर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उद्दीपन विभाव के रूप में बिहारी का यह प्रकृति-चित्रण देखिए:

‘सघन कुंज छाया सुखद, शीतल मन्द समीर।

मनु है जात अजौं वहाँ, उहि जमुना के तीर ॥

आलम्बन रूप में सेनापति का ग्रीष्म वर्णन कितना सजीव तथा स्वाभाविक बन पड़ा है।

‘वृष को तरनि तेज सहसो किरन करि।

ज्वालन के जाल बिकराल बरसत हैं।।

अलंकार-विधान के रूप में बिहारी ने प्रकृति का कितना सुन्दर स्वाभाविक वर्णन किया है।

‘सोहत ओढे पीत पट, स्याम सलोने गात।

मनो नील मनि सैल पर, आतपु पर्यो प्रभात ॥

आधुनिक युग में जहाँ हिन्दी-साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ है, वहाँ प्रकृति-चित्रण का भी उत्कृष्ट कोटि का चित्रण हुआ है। भारतेन्दु युग में हमें प्रकृति का उपमान-उद्दीपन एवं आलम्बन रूप में चित्रण मिलता है। द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रकृति-चित्रण प्रायः परम्परायुक्त रूप में मिलता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ और मैथिलीशरण गुप्त ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। प्रियप्रवास में प्रकृति का चित्रण मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उनकी पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है। जैसे संध्या का यह दृश्य:

‘दिवस का अवसान समीप था,

गगन था कुछ लोहित हो चला।

तरु शिखा पर थी अब राजती,

कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।।’

मैथिलीशरण गुप्त ने भी प्रकृति का आलम्बन रूप में मनोहारी चित्रण किया है.

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में।

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में ॥

आलंकारिक रूप में प्रकृति का प्रयोग गुप्त जी ने इन शब्दों में किया है:

‘करुणे क्यों रोती है ? उत्तर में और अधिक तू रोई।

मेरी विभूति है जो भवभूति कहे क्यों कोई।।’

रहस्यात्मक रूप में प्रकृति का प्रयोग महादेवी वर्मा तथा पन्त के इन शब्दों में देखा जा सकता है:

‘तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस पार क्या है’ तथा

‘न जाने नक्षत्रों से कौन ?

निमन्त्रण देता है मुझको मौन।।’

छायावादी काव्य में प्रकृति-चित्रण का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में-‘छायावाद की प्रकृति, घट-कूप आदि से भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। छायावादी कवि प्रकृति-सौन्दर्य में इतना अधिक अभिभूत हुआ है कि प्रकृति की रम्य क्रीड़ा स्थली परित्याग कर प्रेमिका के प्रेम-पाश तक में भी नहीं फँसना चाहता। दृष्टव्य है कविवर पंत का यह पद:

‘छोड़ दुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।

बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

छायावादी कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रसाद को ‘उषा’ भी पनघट पर पानी भरने वाली नारी के रूप में दिखलाई देती है :

‘बीती विभावरी, जागरी,

अम्बर पनघट में डुबो रही तारा घट उषा नागरी।

छायावादी कवियों ने प्रकृति में रहस्यमय सत्ता के दर्शन किए हैं। मौन-निमन्त्रण में पन्त जी की अनुभूति देखिए:

‘न जाने सौरभ के निस कौन

संदेशा मुझे भेजता मौन ?

प्रकृति का आलंकारिक वर्णन महादेवी के शब्दों में देखिए:

**‘विधु की चाँदी की प्याली,
मादक मकरन्द भरी सी।**

छायावादोत्तर हिन्दी-काव्य में प्रकृति-वर्णन का हास होने लगा। अज्ञेय ने छायावाही शीतल चाँदनी का उपहास एवं बौद्धिकता का नग्न यथार्थ ‘शिखर की राका निशा’ कविता में इस प्रकार किया है:

‘वंचना है चाँदी सित....

शिशिर की राका-निशा की शान्ति है निस्सार।

इस प्रकार धीरे-धीरे प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नई कविता में प्रकृति-वर्णन का अभाव होता जा रहा है। किन्तु कहीं-कहीं हमें नई कविता में भी प्रकृति का आलम्बन । रूप में चित्रण मिल जाता है। जैसे-‘जाड़ों की सुबह’ का यह चित्र दृष्टव्य है:

**‘रात के कम्बल में
डुबकी उजियाली ने
धीरे से मुँह खोला
नीड़ों में कुल-बुल कर
अलसाया अलसाया
पहला पंक्षी बोला।’**

इस प्रकार काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकृति को स्थान मिला है। यह आदिकाल से । ही मानव की सहचरी रही है। प्रत्येक काल में कवियों का इससे स्वाभाविक प्रेम रहा है। यह मानव की माता है। इसकी गोद में मानव शान्ति प्राप्त करता रहा है और करता रहेगा। वास्तव में प्रकृति का घर काव्य है और प्रकृति काव्य का प्राण है। प्रकृति ने हमारे प्रत्येक सुख-दुःख में हमेशा साथ दिया है। अतः अन्त में हमारी अभिलाषा है कि हम भी ‘पन्त की छाया के साथ-साथ ‘प्रियतम’ में मिल जाएँ:

‘हाँ सखि! आओ बाँह खोल हम लग कर गले जुड़ा लें प्रान।
फिर तुम तम में हम प्रियतम में हो जाये द्रुत अन्तर्ध्यान॥’